इकाई 3 ईसाई धर्म

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंत तक छात्रों से यह अपेक्षा है कि वे–

- ईसाई धर्म के सार को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- इस संदर्भ में दूसरों के ज्ञान को और अधिक स्पष्टता प्रदान कर सकें।
- ईसाई धर्म को नहीं जानने वालों के समक्ष इस धर्म को प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

विश्व के सबसे बड़े धर्मों में से एक ईसाई धर्म की स्थापना वर्तमान युग की प्रथम शताब्दी में यीशू मसीह के द्वारा की गई थी। भौगोलिक रूप से यह सबसे विस्तारित धर्म है। साथ ही यह एक वैश्विक धर्म है जिसे हर नस्ल, भाषा, रंग, संस्कृति अथवा राष्ट्रीयता के लोगों ने अपनाया है और विश्व की एक तिहाई जनसंख्या में व्याप्त है। यह तथ्य भारत के संदर्भ में भी उतना ही सही है जितना की अन्य देशों के संदर्भ में। भारत की राष्ट्रीय जनसंख्या में ईसाई जनसंख्या मात्र 2.34 प्रतिशत है, किन्तु भौगोलिक रुप से यह देश के लगभग प्रत्येक हिस्से में पाया जाने वाला धर्म है। इस इकाई में हम ईसाई धर्म के कुछ प्रमुख लक्षणों पर विचार करेंगे।

3.2 ईसाई धर्म–यीशू मसीह केंद्रित धर्म

ईसाई धर्म नाजरथ के यीशू अर्थात यीशू मसीह, जो मनुष्य एवं दैवीय शक्ति दोनों माने जाते हैं, पर केंद्रित धर्म है। ईसाई उन्हें ईश्वर की संतान, ईश्वर के विशिष्ट प्रकटीकरण और मोक्ष दाता के रूप में मानते हैं। मार्क के *गोस्पेल* के अनुसार, 'यह यीशू मसीह, ईश्वर की संतान, के 'सुसमाचार का आरंभ है' (मार्क 1.1)।

ईसाई धर्म वस्तुतः जीने की एक विधि है। ईसाई होना मात्र एक आस्था नहीं है। यह

जीने की एक ऐसी निश्चित कला है, जिसमें हमारा दैनिक जीवन किसी न किसी रूप में यीशू से प्रभावित होता है। उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति चर्च में होती है। प्रत्येक ईसाई को ईश्वर के ऐसे दत्तक पुत्र के रूप में माना जाता है, जो यीशू के माध्यम से ही ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करता है।

3.3 नाजरथ के यीशू का इतिहास

यीशू एक यहूदी थे। उनका जन्म लगभग 3 ई. पू. में बेथलहम में हुआ था। बेथलहम, सम्राट आगस्तस (23 ई.पू. 14 ई.) के शासन काल के यहूदी साम्राज्य फिलिस्तीन में स्थित था। उनकी परवरिश मैलिली के एक गांव नाजरथ में हुई थी। उनकी पहली जन उपस्थिति सम्राट तीब्रियस (14 से 37 ई.) के काल में हुई थी और उनकी मृत्यु दक्षिणी फिलिस्तीन के रोमन गवर्नर पांटियस पाइलेट के शासन काल में 30 ई. में एक क्रास पर हुई थी। ईसाई धर्म के इस ऐतिहासिक चरित्र को ईसाई धर्म के लेखों में स्पष्टतः वर्णित किया गया है और कहा गया है कि "पांटियस पाइलेट के शासनकाल में यीशू को क्रॉस पर लटकाया गया, जिससे उनकी मृत्यु हुई"।

यीशू के जीवन के प्राथमिक स्रोत चार *गॉस्पेल–मैथ्यू, मार्क, ल्यूक, जॉन* तथा बाकी *न्यूटेस्टामेंट* माने गये हैं। रोमन इतिहासकारों के लेखनों में भी यीशू के बारे में कुछ स्वीकार्य संदर्भ मिलते हैं। टेसिटस नामक इतिहासकार के 115वीं ई. के लेखनों में सम्राट नीरों के द्वारा 64 ई. में ईसाई धर्म के दमन का वर्णन मिलता है। पिलनी के 111वीं ई. के संवादों से पता चलता है कि ईसाई यीशू को 'प्रभु समान' पूजते थे और वे सम्राट अथवा रोमन देवों की सत्ता को सर्वथा नकारते थे। इन लेखनों के अनुसार; "यीशू, जिसके नाम से ईसाई धर्म आया, को तीब्रियस के शासन काल में पांटियस पाइलेट के द्वारा सूली पर चढ़ाया गया था"।

शब्द *जीजस क्राइस्ट* (Jesus Christ), जिसे हिन्दी में यीशू मसीह, कहते हैं, का उद्‌भव हिब्रू शब्द *येशुआ* से हुआ है, जिसका अर्थ होता है 'प्रभु ही बचाता है'। *क्राइस्ट* शब्द वस्तुतः यूनानी शब्द *क्रिस्टोस* का अंग्रेजी रूप है, जो वास्तव में हिब्रू शब्द *मसीहा* से बना है। इन दो शब्दों *क्रिस्टोस* और *मसीहा* का अर्थ है 'वह जो चुना गया है, अभिषिक्त है'। *मसीहा* अथवा *क्राइस्ट* एक आस्था जनित सम्मानसूचक शब्द है, जिसे यीशू को स्वयं प्रभु के द्वारा दिया गया था और जिसके पीछे संभवतः एक दैवीय उद्‌देश्य था। यहूदियों की सदियों से यह आशा बंधी थी कि प्रभु कभी न कभी इजराइल के साम्राज्य की आदर्श संरचना को पुनर्स्थापित करने के लिए और लोगों के हृदय परिवर्तन के लिए अपना एक मसीहा अवश्य ही भेजेंगे। इजराइल के मसीहा बार–बार मसीहा के आगमन एवं प्रभु के साम्राज्य के स्थापन के बारे में बताते चले आ रहे थे। उनकी इस आशा की पूर्णतः सभी ईसाई नाजरथ के यीशू के उपदेशों एवं कार्यों में पाते हैं, विशेषकर उसके बाद से जब वह अपनी मृत्यु शैय्या से उठ खड़े हुए थे। अतः ईसाई उन्हें सर्वमान्य रूप से "ईश्वर का मसीहा" स्वीकार करते हैं (ल्यूक, 9:20)। संक्षेप में यीशु का अर्थ है; ईश्वर की संतान अर्थात यीशू मसीह।

3.4 ईसाई *बाइबिल*

वह प्रत्येक व्यक्ति जो ईसाई धर्म का अध्ययन करता है, वह शीघ्र ही इसके लिए *बाइबिल* के महत्व को समझ जाता है। यीशू मसीह के बारे में जितना भी हमें ज्ञात है वह *बाइबिल* के पृष्ठों में निहित हैं। यह विश्व के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले ग्रंथों में से एक है और इसका विश्व के सभी समाजों एवं संस्कृतियों पर व्यापक प्रभाव स्पष्ट दिखता है। *बाइबिल* पर अनेकानेक भाष्य उपलब्ध हैं। यदि कोई किसी भी ईसाई पूजन में जाए तो वह *बाइबिल* के अंशों का श्रवण अवश्य करेगा। *बाइबिल* ईसाई पूजन

का अभिन्न अंग है। यह जीवन की ईसाई विधि का प्राथमिक स्रोत है। विश्व में रहने वाले लाखों ईसाई अपने दिन की शुरुआत *बाइबिल* के अंशों के मनन के साथ करते हैं।

बाइबिल को हम 'पवित्र ग्रंथ' के नाम से भी जानते हैं। यह यूनानी पद *ता बिबलिया* अर्थात 'पुस्तकें' से बना है। यह यूनानी पद बहुवचन है और इसलिए पुस्तकों अथवा लेखों के समुह को दर्शाता है। इस अर्थ के अनुसार ही रोमन कैथोलिक *बाइबिल* में 72 पुस्तकें और प्रोटेस्टेंट में 66 पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों को ईसाई धर्म की प्राधिकृत पुस्तकें माना जाता है। इन्हें लगभग 1000 वर्षों में लिखा गया और ये सांस्कृतिक ऐतिहासिक संदर्भों और विभिन्न लेखन शैलियों को स्वयं में समाहित करती हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) ईसाई धर्म की यीशू मसीह के व्यक्तित्व पर आधारित धर्म के रूप में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2) ईसाई धर्म में *बाइबिल* के महत्व को रेखांकित कीजिए।

....

....

....

....

प्राचीन *टेस्टामेन्ट* और नवीन *टेस्टामेन्ट*

बाइबिल को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है –प्राचीन *टेस्टामेन्ट* एवं नवीन *टेस्टामेन्ट*। *टेस्टामेन्ट* लैटिन शब्द *टेस्टामेन्टम* से लिया गया है, जिसका अर्थ है किसी व्यक्ति द्वारा विशेष रूप से मृत्यु के पहले बनाया गया 'इच्छा–पत्र' या 'वसीयतनामा'। पहला (प्राचीन *टेस्टामेन्ट*) और कहीं अधिक विस्तृत भाग है। यह मूल रूप से यहूदी धर्म का ग्रंथ है तथा इसे हिब्रू ग्रंथ के रूप में भी जाना जाता है। यह लगभग पूर्णतः हिब्रू इज़राइल की भाषा में लिखी गयी पुस्तक है। कुछ पुस्तकें आरमाइक भाषा में भी लिखी गई हैं। प्राचीन *टेस्टामेन्ट* यीशू मसीह तक के समय के यहूदी धर्म के इतिहास और धार्मिक विचारों की व्याख्या करती है।

नवीन *टेस्टामेन्ट*

बाइबिल की विशेष रूप से ईसाई पुस्तकों को सामूहिक रूप से नवीन *टेस्टामेन्ट* कहा जाता है। इसमें प्रथम शताब्दी के ईसाईयों की 27 रचनायें संकलित हैं। ये सारी अधिकांशतः आकार में छोटी हैं। चूंकि अधिकांश लेखक यहूदी मूल के थे इसलिए पुस्तकें यूनानी भाषा में लिखी गई हैं। यूनानी भाषा रोमन साम्राज्य की सामान्य भाषा थी।

नवीन *टेस्टामेन्ट* (ईसा मसीह के) चार *सुसमाचारों* (Gospel) से प्रारंभ होता है। ये *'सुसमाचार'* ईसा मसीह के जीवन और उपदेशों को प्रस्तुत करते हैं और साथ ही साथ इस पर भी प्रकाश डालते हैं कि यीशू कौन हैं और इस संसार के लिए वे क्या हैं। इसके पश्चात् *प्रेरितों के अधिनियम* (Acts of Apostles) आते हैं। ये अधिनियम ईसाई चर्च के पहले तीस सालों की कहानी बताते हैं। उसके बाद *पॉल के तेरह पत्र* आते हैं। पॉल पहले ईसाइयों को दुःख देने वाला, उत्पीड़न देने वाला था। किन्तु वह प्रबुद्ध यीशु के साथ डेमेस्कस के रास्ते में एक नाटकीय मुठभेड़ के बाद ईसाई धर्म का एक महान धर्म प्रचारक बन गया। उसके *पत्र* चर्च तथा भूमध्य क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए लिखे गये थे। उसका पहला पत्र यीशु के देहांत के 25 वर्षों के भीतर ही लिखा गया था। उसके पश्चात् आठ अन्य *पत्र* आए। ये *पत्र* प्रारंभिक ईसाई मार्गदर्शकों द्वारा विभिन्न चर्चों के प्रति लिखे गये *कैथोलिक पत्रों* के रूप में जाने जाते हैं। उसके बाद जॉन की प्रकाशित पुस्तक (Book of Revelation) आती हैं। यह यहूदी साहित्य दिव्य की साहित्यिक शैली में प्रस्तुत एक दिव्य रचना है और इसे भविष्योद्घोषक (Apocalyptic) साहित्य के रूप में जाना जाता है। यह एशिया माइनर के सात नये चर्चों को, जो उत्पीड़न के कारण अत्याधिक दबाव में थे, सम्बोधित की गई 'आशा की पुस्तक' है।

सुसमाचार

नवीन *टेस्टामेन्ट* की पहली चार पुस्तकें *सुसमाचार* या 'अच्छी खबर' के नाम से जानी जाती हैं। यहाँ पर शब्द *सुसमाचार* की व्याख्या करना आवश्यक है। यह एक प्राचीन अंग्रेजी शब्द *गुड स्पेल* (Gōd-spell) से लिया गया है। यह दो शब्दों *गुड* और *स्पेल* का संयोजन है। *गुडस्पेल* का अर्थ है 'अच्छा समाचार'। यह एक यूनानी शब्द *यूनजेलियन* (euangellian) का अनुवाद है, जिसका अर्थ है 'अच्छा समाचार'। *सुसमाचार* लिखने वाले चार विभिन्न लेखकों ने *सुसमाचार* के लिए जिस मौलिक शब्द का प्रयोग किया था, वह *यूनजेलियन* ही था। इन लेखकों को *यूनजेलियनिस्टस* के नाम से भी जाना जाता है। वे चार लेखक हैं–मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन। मार्क ने सन् 64 के आसपास, मैथ्यू व ल्यूक ने सन 67 के आसपास तथा जॉन ने सन् 95–100 के मध्य में *सुसमाचार* को लिखा था। यीशु मसीह के जीवन और उपदेशों पर केन्द्रित होने के कारण इन पुस्तकों को *सुसमाचार* कहते हैं। उनके जीवन तथा उपदेशों को विश्व के लिए अच्छे समाचार के रूप में देखा गया क्योंकि इनका उद्देश्य, उनके ईश्वर–पुत्र होने के कारण, लोगों का धार्मिक उद्धार करना था।

सुसमाचार श्रद्धा के प्रलेख हैं

चारों *सुसमाचारों* के प्रारंभिक बिन्दु नाजरथ के ऐतिहासिक यीशु हैं। उनके शब्द और उनके कर्म, उनके धर्मप्रचारकों और तत्कालीन शिष्यों द्वारा देखे और सुने गये थे। यहूदी धार्मिक शिक्षकों की परम्परा में, यीशु ने उन्हें अपनी शिक्षा को याद रखना सिखाया ताकि वे उन्हें उच्चतम निष्ठा के साथ आगे पहुँचा सके। यीशु से सम्बधित उनकी शिक्षाओं वह उपदेशों को प्रारंभिक ईसाई समुदायों में मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया जाता था।

ज्ञात रहे कि ईसाई यीशु मसीह के शब्दों और कर्मों को उनकी मृत्यु और पुनरुत्थान के तुरंत बाद के समय लगभग 30 ई. से ही प्रकाशित कर रहे थे। ईसाई समुदायों (*चर्चों*) को कुछ वर्षों में ही पूर्वी भूमध्य क्षेत्रों में स्थापित किया जा रहा था। यीशु के जीवन, मृत्यु व पुनरुत्थान की कथाओं और उनकी शिक्षाओं को इन *चर्चों* में मौखिक परम्परा द्वारा संरक्षित किया जा रहा था। बाद में, 65 ई. के लगभग और उसके अग्रगामी वर्षों में ही इन कथाओं का संकलन किया जा सका था तथा धर्मोपदेशकों द्वारा *सुसमाचार* के रूप में लिखा गया था।

ये धर्मोपदेशक हमारे आधुनिक मापदण्डों में न तो जीवन–चरित लेखक थे और न ही इतिहासकार। वे यीशु द्वारा कही गई व की गई सभी चीजों का ब्यौरा देने में भी रुचि नहीं रखते थे। प्रत्येक धर्मोपदेशक अपनी सामग्री का चयन करता, उन्हें एक विशेष रूप में व्यवस्थित करता और यीशु के शब्दों व कार्यों के ऐतिहासिक विवरण को एक विशेष ईश्वरवादी अर्थ सम्पादित करता था। इन *सुसमाचारों* में यीशु के बारे में भरपूर ऐतिहासिक सूचनायें निहित हैं, परंतु उनकी व्याख्या धर्मोपदेशकों द्वारा सदैव यह दर्शाने के लिए की गई है कि यीशु मसीह के जीवन, मृत्यु व पुनरुत्थान के द्वारा कैसे ईश्वर की योजना मानवजाति के मोक्ष के लिए इतिहास में व्यवस्थापित की गई है।

बाइबिल; ईश्वर के शब्द

ईसाई लोग *बाइबिल* (दोनों प्राचीन व नवीन *टेस्टामेन्ट*) को 'ईश्वर के शब्द' के रूप में पूजते हैं। उनका मानना है कि यह सभी मानवीय सीमितताओं के लिए मानवीय भाषा में लिखी गई एक 'दैवीय प्रेरणात्मक' पुस्तक है। 'प्रेरणात्मक पुस्तक' का अर्थ है कि *बाइबिल* मात्र आध्यात्मिक प्रकाश देने वाला महान साहित्य नहीं है, बल्कि यह ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। प्रेरणा का यह अर्थ नहीं है कि मानव लेखक मात्र दैवीय कर्म के सम्पादन के लिए एक निष्क्रिय साधन है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि मानव लेखक ने अपनी भाषा में और अपने ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परिवेश में जो कुछ भी लिखा है, वह ईश्वर द्वारा निर्देशित था। इसलिए *बाइबिल* में लिखा गया प्रकरण मानवीय शब्दों में लिखा गया ईश्वरीय संदेश है। किसी भी प्रमाणित करने योग्य ईसाई विश्वास को अवश्य ही *बाइबिल* पर आधारित होना चाहिए। यही कारण है कि *बाइबिल* का अनुवाद करना ईसाई *चर्चों* का मुख्य ध्येय रहा है। आज सम्पूर्ण *बाइबिल* यही कुछ 330 भाषाओं में और नवीन *टेस्टामेन्ट* 900 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) नवीन *टेस्टामेन्ट* पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

2) इस कथन की व्याख्या करें – "बाइबिल मानव शब्दों में लिखा गया ईश्वरीय संदेश है"।

....

....

....

....

3.5 यीशु की प्रमुख शिक्षा – ईश्वर का साम्राज्य

अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि 'ईश्वर के साम्राज्य का प्रसंग ही यीशु के उपदेशों का केन्द्र–बिन्दु है। अतः इसकी व्याख्या आवश्यक है। यीशु को मानने वालों का विश्वास है कि उनकी शिक्षा के असाधारण विवेक के रूप में, उनके जीवन की पवित्रता के रूप में, लोगों को शारीरिक व आध्याात्मिक पीड़ा से मुक्ति दिलाने की उनकी क्षमता के रूप में, लोगों के हृदय को एक ईश्वर–विरुद्व और लोगों के प्रति क्रूर जीवन से एक ऐसे नये जीवन के रूप में जो ईश्वर का सहभागी व पड़ोसियों के प्रति मित्रवत हो परिवर्तित करने के रूप में, नीचतम, सबसे गरीब व पददलित के प्रति प्रतिदर्शित उनके प्रेम के रूप में, ईश्वर का आधिपत्य (ईश्वर का साम्राज्य) उमके मध्य आ गया है। यीशु ने अपने व्यक्तित्व की सारी शक्ति उस ईश्वर के साम्राज्य के स्थापन में लगा दी जो मानव जीवन के पूर्ण धार्मिक उत्थान के लिए है। उन्होंने पूर्णरूप से ईश्वर के साम्राज्य को साकार रूप देने के लिए अपना जीवन व्यतीत किया।

यीशु मसीह का लक्ष्य एक पुनर्जीवित मानवता को लाना और एक ऐसे नये समाज की स्थापना करना था जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में बसे हुए आधारभूत मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। अपने इस लक्ष्य को व्यक्त करने के लिए यीशु ने 'ईश्वर के साम्राज्य' की अवधारणा का प्रयोग किया। इस प्रकार के विश्व को उनके समय के यहूदी विश्व के लिए समझना आसान था।

लगभग सभी प्राचीन धर्मों में राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था इसलिए यहूदियों द्वारा यीशु के 'ईश्वर के साम्राज्य' के विचार को खूब स्वीकृति मिली। उनके लिए यहोवा, उनका ईश्वर, उनका राजा था, जिसने इस ब्रहमाण्ड को बनाया और मॉसेस के नेतृत्व में उन्हें ईजिप्ट में दासता (बेगारी) से मुक्त किया। इजराइल के सांसारिक राजा मात्र ईश्वर के उप–राजप्रतिनिधि थे, जिन्हें धरती पर ईश्वर के आदर्श साम्राज्य को स्थापित करने के लिए नियुक्त किया गया था। परंतु राजतंत्र की असफलता से छिन्न–भिन्न हुए वे लोग आशा करने लगे कि ईश्वर का मसीहा आये और उनके रोम जैसे दुश्मनों, जिसने शक्तिपूर्वक सेना के द्वारा उन्हें अपने अधिकार में लिया हुआ था, को उखाड़ फेकें और न्याय, शांति और समृद्धि के साम्राज्य की स्थापना करे।

जब यीशु ने अपने व्यक्तित्व और कर्म द्वारा ईश्वर के साम्राज्य के आगमन की घोषणा की, तो फिलिस्तीन के लोगों को यह ज्ञात था कि यीशु किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्हें किसी अन्य व्याख्या की आवश्यकता नहीं थी। पंरतु, यीशु ने ईश्वर के साम्राज्य से संबंधित लोगों की भौतिकवादी गलत अवधारणा को ठीक किया। उनकी ईश्वर के साम्राज्य की अवधारण राजनैतिक जीत, चकाचौंध के दिखावे और शक्तिशाली के विजयोत्सव के लिए नहीं थीं। मसीहा के साम्राज्य का मूल स्वभाव तो हृदय–प्रिवर्तन करना था। स्वयं के स्वार्थीपन, लालच और द्वेष के आंतरिक परिवर्तन और स्वयं को ईश्वर के सहभागी बनाकर और समाज में एक–दूसरे के प्रति भातृत्वभाव को रखकर एक नये जीवन के प्रति स्वयं को प्रतिबद्ध करने से इसका आरंभ होता है। इसे प्रेम, करुणा, न्याय, आनंद और सभी के हित के लिए आत्म–त्याग के नये मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। इसे समाज के सबसे निम्न स्तर, शक्तिहीन और गरीब, जिसे किसी अन्य से अधिक तत्काल सहारे, देखभाल और रक्षा की आवश्यकता है, से आरंभ होना चाहिए।

यीशु द्वारा प्रस्तावित 'आशीर्वचन' (beatituds), जिन्हें मैथ्यू के *सुसमाचार* 5:3–12 में

एवं ल्यूक के 6:20–26 में प्रस्तुत किया गया है, साम्राज्य के मूल्यों के संदर्भ में एक नया घोषणा पत्र है। *आशीर्वचन* का मैथ्यू द्वारा प्रस्तुत विवरण इस प्रकार है –

धन्य है वे जो हृदय से दीन है, क्योंकि स्वर्ग का साम्राज्य उनके लिए है।

धन्य हैं वे जो शोक करते हैं, क्योंकि ईश्वर उन्हें सांतवना देता है।

धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि यह पृथ्वी उन्हीं की है।

धन्य हैं वे जो सदाचार के लिए भूखे व प्यासे रहते हैं, क्योंकि ईश्वर उन्हें सन्तोष देगा, तृप्ति देगा।

धन्य हैं वे जो दयालु हैं, क्योंकि वे ईश्वर की दया प्राप्त करेंगे।

धन्य है वे जो हृदय के शुद्ध है, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन करेंगे।

धन्य हैं वे जो शांतिदूत हैं, क्योंकि वे ईश्वर के पुत्र कहे जायेंगे।

धन्य हैं वे जो सच्चाई के लिए प्रताड़ित होते हैं, क्योंकि स्वर्ग का साम्राज्य उन्हीं के लिए है।

धन्य हो तुम यदि लोग तुम्हारी इसलिए निंदा करें, प्रताड़ित करे, और अपने आधार पर तुम्हारी गलत तरीके से हर प्रकार की बुराई करें, क्योंकि तुम मेरे अनुयायी हो।

तब तुम आनंदित और प्रसन्न रहना, क्योंकि स्वर्ग में तुम्हें इसका प्रतिफल मिलेगा, क्योंकि ठीक इसी प्रकार इन लोगों ने तुम से पहले पैगम्बरों को भी प्रताड़ित किया था।

गरीबी और दुःख, जो अभी तक ईश्वर–प्रदत अभिशाप माने जाते थे, यीशु के नये समाज संबंधी विचार के सामने अब एक चुनौती बनकर आए। शक्ति, घमण्ड और अपनी खुशी के लिए धन पर अमर्यादित निर्भरता के विरुद्व यीशु ने एक ऐसे नये समाज की स्थापना की योजना बनाई, जिनके सबसे अधिक रचनात्मक मूल्यों में नम्रता, न्याय, शांति, करुणा और पीड़ित मानवता के प्रति मानवीय मातृत्व सम्मिलित थे।

साम्राज्य का प्रसंग यीशु के लक्ष्य में व्याप्त है

यीशु ने ईश्वर के साम्राज्य के प्रतिष्ठापन द्वारा फिलिस्तीन की स्थिति का प्रति–उत्तर दिया। यह एक नये जीवन और एक नये प्रकार के समाज का प्रतिष्ठापन था। यह प्रेम, समानता, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, शांति, न्याय और प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर–पुत्र मानकर उसमें व्याप्त मूल अच्छाई को पहचानकर उनके प्रति करुणा से व्याप्त साम्राज्य के मूल्यों पर आधारित था। यह साम्राज्य परलोक में पूर्ण आनन्द की निश्चयात्मक प्राप्ति को स्वीकार करता था। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था इस बात का संकेत थी कि ईश्वर का शासन (अर्थात् ईश्वर का साम्राज्य आ गया है) लोगों के हृदय में और उनके समाज के मध्य कार्यरत है।

ईश्वर की लोगों के मध्य करुणामय उपस्थिति तथा लोगों की रक्षा करने के कर्म की परम अभिव्यक्ति के रूप में, यीशु ने भूखों को खाना खिलाया, बीमारों का उपचार किया, दानवी शक्ति से पीड़ित लोगों को मुक्त किया, पापियों को माफ किया और उन सबके साथ मित्र–भोज किया, मुख्य रूप से उनके साथ जो समाज में निम्नतम या सीमांत थे। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए मानव भ्रातृत्व या मानव एकता के समुदायों की स्थापना की।

यही कारण था कि ईश्वर के साम्राज्य की अवधारणा *सुसमाचारों* में बार–बार आई – 14 बार ल्यूक में और 33 बार मैथ्यू में। यीशु के सभी 45 दृष्टांत सम्पूर्ण *सुसमाचारों* में व्याप्त है। ये दृष्टांत जैसे – प्रोडिगल पुत्र, अच्छे सेमारिटन, लेजारस और अमीर व्यक्ति, अंगूर के खेत के मजदूर, सोवर का दृष्टांत आदि की कहानियाँ ईश्वर के साम्राज्य के विभिन्न पक्षों की व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार, *सुसमाचार* की सभी चमत्कारी कथायें भी समान चीजों को दर्शाती हैः यीशु मसीह के व्यक्तित्व में व उनके व्यक्तित्व के द्वारा ईश्वर के शासन की शक्ति का कार्यरत होना।

उसी प्रकार, ईश्वर की प्रार्थना–एक विशेष प्रकार की प्रार्थना जिसे यीशु ने अपने शिष्यों को सिखाया–ऐसे ही साम्राज्य के प्रसंग को दोहराती है। यही वह प्रार्थना है जिसे प्रत्येक ईसाई प्रतिदिन याद रखता है और पढ़ता है। इस प्रार्थना का मैथ्यू द्वारा किया गया वर्णन इस प्रकार है–

'हमारा पिता जो स्वर्ग में है उसका नाम पूजनीय है

तुम्हारा साम्राज्य जगत में आए। जिस प्रकार तुम्हारा (ईश्वर का) कहा स्वर्ग में पूरा होता है, उसी प्रकार पृथ्वी पर भी हो।

आज हमें हमारा प्रतिदिन का आवश्यक खाना प्रदान करो।

हमारे अपराधों को माफ करो क्योंकि हमने भी अपने अपराधियों को माफ किया है।

हमारी भारी कठिन परीक्षा मत लो,
अपितु हमें बुराई से मुक्त करो (मैथ्यू 6:9–11)।

यीशु की मृत्यु के मूल्य पर ईश्वर का साम्राज्य

यीशु को ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना करने के वादे को पूरा करने की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। कैसे? यीशु द्वारा उपदिष्ट ईश्वर के साम्राज्य के मूल्यों ने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित किया। बहुत सारे लोग उनके शिष्य और मित्र बन गए और उन्होंने आपस में मिलकर एक समुदाय का निर्माण किया। यीशु ने उनमें से 12 को अपने धर्मोपदेशक के रूप में चुना। इस बात ने यहूदी धर्म के धार्मिक और राजनैतिक अधिकारियों और फिलिस्तीन में अधिकृत रोमन उपनिवेशवादियों को भयभीत कर दिया। क्योंकि यीशु के ईश्वर के साम्राज्य की नैतिकता पर आधारित नये मानवता के संदेश में सामाजिक–राजनैतिक और धार्मिक प्रभुत्व और विनाशकारी प्रवृतियों का नाश करने की शक्ति छुपी थी। इसी कारण उन लोगों ने उन्हें क्रॉस पर लटका दिया, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई।

परंतु, तीसरे दिन उनके शिष्यों व मित्रों ने उन्हें देखा और उन्हें मृत्यु से ऊपर उठते हुए अनुभव किया। उन्होंने उनको अपनी आत्मा के बल से शक्ति–सम्पन्न किया और उन्हें आदेश दिया कि वे सम्पूर्ण विश्व में जाकर उनके गवाह बनें, उनके अच्छे समाचारों को फैलाएँ और शिष्य बनाएँ। यीशु ने यह वादा भी किया कि वे काल के अंत तक उनके साथ रहेंगे (मैथ्यू 28:16–20)। अतः, ईसाई मत के केन्द्र में यीशु मसीह का व्यक्तित्व है – वह जिसमें ईसाई लोग विश्वास करते हैं और पूजा करते हैं, वह मनुष्य और ईश्वर दोनों रूपों में सत् है। इस प्रकार, क्रूरता व मृत्यु का रोमन क्रॉस श्रद्धा का सार्वभौमिक प्रतीक बन गया। यह क्रॉस एक प्रिय ईश्वर के ऐसे त्याग को प्रदर्शित करता है, जिसके द्वारा विश्व की रक्षा की जा सकती है। अतः ईसाई मत के संदेश का मूल यह है कि यीशु पाप और मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हुए मृत्यु से ऊपर उठ गये थे। 'पुनरुत्थान' पद का प्रयोग *बाइबिल* में उन घटनाओं की कड़ियों को दर्शाने के लिए किया गया है जो यीशु की मृत्यु के बाद घटित हुई।

प्रबुद्ध ईश्वर के आज्ञापत्र या आदेश के साथ उनके (यीशु के) शिष्य सम्पूर्ण भूमध्य विश्व में और उससे भी आगे जाकर इस शुभ समाचार का प्रमाण प्रस्तुत करते रहें कि यीशु मसीह ईश्वर–पुत्र हैं तथा वे मानवों को पाप और मृत्यु के भय से मुक्त करने के लिये पृथ्वी पर आये थे। कुछ प्राचीन परम्पराओं में वर्णित है कि थॉमस नामक यीशु का एक धर्मोपदेशक भारत भी आया था और उसने दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों विशेषतः मालाबार क्षेत्र में, जो वर्तमान में केरल में स्थित है, शुभ समाचार का उपदेश दिया था और वहाँ कुछ लोगों ने इस नई धार्मिक आस्था को स्वीकार भी कर लिया था। बाद में वह सेन्ट थॉमस पर्वत, जो चेन्नई की एक छोटी पहाड़ी है, पर मार दिया गया था।

3.6 ईसाई धर्मः एक सामुदायिक धर्म

ईसाई धर्म मुख्यतः एक समुदाय पर आधारित धर्म है। नवीन *टेस्टामेन्ट* में, चर्च के लिए ग्रीक शब्द (*एक्लेसीया*) का प्रयोग किया गया है। यह लोगों के एक समूह को निर्देशित करता है। इसका अक्षरशः यह अर्थ है कि ईसाई धर्म में आस्था रखने वाले लोगों का समूह, ऐसे लोगों का समूह है जिन्हें ईश्वर ने विशेष रूप से चुना है। इसका कारण यह है कि अपनी विभिन्न सांस्कृतिक भूमिकाओं के बावजूद सभी ईसाई यीशु में एक हो जाते हैं। चर्च, जो ईसाई समुदाय का शरीर है, ईसाई ढंग के जीवन व क्रियाकलाप की माँ व शिक्षक है, जहाँ सभी ईसाई लोग यीशु मसीह की जीवंत यादों को जीवित पाते हैं।

ईसाई धर्म व्यक्ति को अनिवार्य रूप से एक समुदाय के सदस्य के रूप में देखता है। मानव एक सम्बंधों में रहने वाला प्राणी है, न कि कोई पृथक एवं स्वतन्त्र रूप से भटकने वाला प्राणी। किसी की मुक्ति व खुशी पूर्ण पृथकत्व में प्राप्त नहीं की जा सकती है। *क्राइस्ट* के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सच्ची मानव बंधुता और सभी लोगों के साथ गहरी सहभागिता को प्रोत्साहन देने की प्रतिबद्धता अवश्य सम्मिलित होनी चाहिए, क्योंकि चर्च यीशु द्वारा इच्छित उस नई मानवता का प्रतीक है, जहाँ मित्रता और प्रेम के बंधन साम्राज्य के नैतिक मूल्यों के अनुसार, उनके गहनतम संस्थात्मक आकार में व्यक्त होते हैं।

यीशु मसीह के उदाहरण के बाद, जो "सेवा करवाने के लिए नहीं बल्कि करने के लिए आये थे" (मैथ्यू 20:28) चर्च मानव परिवार की सेवा में हैं। इसलिए, पोप जॉन पॉल II प्रायः कहते थे कि मानवता ही चर्च का मुख्य लक्ष्य है, क्योंकि यीशु मसीह द्वारा लाया गया मोक्ष और मानव–कल्याण सभी को ईश्वर–पुत्र मानकर सभी के लिए था। उसी प्रकार पोप पॉल VI ने अपने बहुसूचित पत्र *एक्लेसियाम सुआम* में जोर दे कर कहा था कि चर्च का आहवाहन सभी लोगों की सेवा करने के लिए किया गया है। परंतु चर्च यह कार्य अकेले नहीं बल्कि सभी धर्मनिरपेक्ष विचारधाराओं, सभी धार्मिक परम्पराओं के विश्वास आधारित समुदायों और सभी ईसाई चर्चों से विचार–विमर्श करके और उनकी सहमति के साथ करता है।

द्वितीय बेटिकन समिति (1963–65) में इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि "कैथोलिक चर्च सभी (अन्य) धर्मों में जो कुछ सत्य और पवित्र है, उन्हें अनदेखा नहीं करता... चर्च का, अतः, अपने पुत्रों के लिए यह उपदेश है कि विवेकसहित और प्रेमपूर्वक, अन्य धर्मों को मानने वालों के साथ बातचीत द्वारा और ईसाई श्रद्धा और प्रेम को साक्षी मानकर, इन लोगों में व्याप्त आध्यात्मिक व नैतिक अच्छाइयों और उसी प्रकार उनके समाज और संस्कृति के मूल्यों की सत्यता स्वीकार करते हुए, उन्हें संरक्षित करें और उन्हें बढ़ावा दें" (*चर्च के ईसाई धर्म को न मानने वाले धर्मों के साथ संबंध पर घोषणा पत्र,* न.2)।

ईसाई धर्म का विभाजन

चर्च का सामुदायवादी स्वभाव विभाजन से मुक्त नहीं है। इसके अस्तित्व के प्रारंभिक शताब्दियों से ही ईसाई धर्म एक से अधिक रूप वाला धर्म रहा है। इनमें से अधिकांश अलग हुए समुदायों को मुख्य चर्चों द्वारा शास्त्र–विरुद्ध अर्थात् ईसाई–विश्वास के मूल अर्थ से पथभ्रष्ट ईसाई समुदाय माना गया।

ऐसा पहला विभाजन सन् 1054 में हुआ। यह विभाजन महान पूर्वी अलगाव के नाम से जाना जाता है। इस अलगाव के कारण ईसाई धर्म दो भागों में विभाजित हो गया–पूर्वी चर्च और पश्चिमी चर्च। पूर्वी चर्च ने अपना नाम पूर्वी रुढ़िवादी चर्च रखा और पश्चिमी चर्च ने अपने पहले नाम रोमन कैथोलिक चर्च को ही बनाए रखा। इनमें से पहले ने पोप के सार्वभौमिक ईसाई धर्म पर केन्द्रिय अधिकार को मानने से इंकार कर दिया। इसने स्वयं को आगे चलकर अनेक उप–समूहों में बाँट लिया।

उसी प्रकार, 16वीं शताब्दी में, प्रोटेस्टेंट सुधारक मार्टिन लूथर और जॉन कैल्विन ने स्वंय को रोमन कैथोलिक चर्च से अलग कर लिया और क्रमशः लूथरन और कैल्विनिस्ट चर्चों का निर्माण किया। आगे चलकर इंग्लिश चर्च ने स्वयं को पोप के अधिकृत्व से अलग करके एंग्लिकन चर्च का निर्माण किया। इनका भी आगे सैकंडों ईसाई चर्चों व पंथों में विभाजन हो गया। आज ईसाई धर्म अपने संज्ञात्मक रूप में सम्पूर्ण विश्व में पाया जाता है। परन्तु मूल रूप से रोमन कैथोलिक चर्च ही संख्या और इसके दूरव्यापी प्रभाव में प्रधान ईसाई पंथ बना रहा। इसने एक परम पथप्रदर्शक पोप के अंतर्गत एक विश्वव्यापी समुदाय का निर्माण किया, जिसमें श्रद्धा और नैतिकता के प्रश्नों पर समान संहिता व विश्वास है।

आधारभूत विश्वास

यीशु मसीह को मानवजाति के दैविक रक्षक के रूप में मानते हुए इसने ईश्वर और मानव सम्बन्धी ईसाई अवबोध को पूर्ण रूप में परिवर्तित कर दिया है। ईसाई विश्वास के मौलिक सिद्वांत 'धर्मदूतों का धर्म' में प्रस्तुत किए गए हैं। 'धर्म दूत के धर्म' में ईसाई धर्म के विश्वास सम्बन्धी कथनों का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध है। यह ईसाई धर्म में विश्वास की परम्परा के अनिवार्य धारणाओं का संक्षिप्तीकरण है। ये वे आधिकारिक विश्वास–कथन है, जो ईसाई धर्म की सैद्वांतिक धर्मपरायणता (अर्थात् मौलिक सिद्वांत) को संरक्षित करते हैं तथा भविष्य की पीढ़ियों को हस्तांरित करते हैं। यह इसलिए 'धर्मदूतों का धर्म' कहलाता है, क्योंकि यह धर्मदूतों से उत्पन्न हुआ है। ये धर्मदूत यीशु मसीह के सीधे सम्पर्क में रहते थे। यह ईसाई धर्म का संक्षिप्त रूप है, जबकि नाईसीन धर्म इसका विस्तृत रूप है। यह धर्म सन् 325 में हुई लाइसिया की पहली सामान्य समिति में आविभाजित ईसाई चर्च द्वारा रचित व प्रचारित किया गया था। अधिकांश चर्च अपने रविवार की सेवा में नीचे दिये गये 'धर्मदूतों के धर्म' की पूजा करते हैं:

मैं सर्वशक्तिमान पिता, स्वर्ग और धरती के रचयिता ईश्वर में आस्था रखता हूँ।

मैं उनके एकमात्र पुत्र, हमारे भगवान, यीशु मसीह में आस्था रखता हूँ।

वे पवित्र आत्मा की शक्ति द्वारा गर्भ में धारण किए गए और कन्या मैरी द्वारा पैदा किए गए।

वे पॉन्टियस पाइलेट के अंतर्गत पीड़ित हुए, शूली पर लटकाये गये, मारे गये और दफनाऐ गए।

वे मृत्यु को प्राप्त हुए,

तीसरे दिन वे पुनः जी उठे।

वे स्वर्ग की ओर बढे।

और पिता के दाहिने हाथ की ओर जा बैठे।

वे जीवितों और मृतों का न्याय करने के लिए पुनः आयेंगे।

मैं पवित्र आत्मा में विश्वास करता हूँ,

पवित्र कैथोलिक चर्च में विश्वास करता हूँ,

संतों के समुदायों में विश्वास करता हूँ, तथा

पापों के क्षमा होने में विश्वास करता हूँ।

यीशु के पुनरुत्थान में और अनंत जीवन में विश्वास करता हूँ। आमीन।

ईसाई धर्म का ईश्वर में विश्वास त्रिपुंटी एकेश्वरवादी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसका अर्थ है कि ईश्वर तीन दैविक व्यक्तियों–पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा– का एक इस प्रकार का शाश्वत धार्मिक समागम है कि वे एक और सिर्फ एक ही ईश्वर का निर्माण करते हैं। जिनके एक ही दैविक स्वभाव हैं और एक ही दैविक अस्तित्व है। यह एक ऐसी ईश्वरवादी अंतदृष्टि है जो यीशु मसीह में ईश्वर की आत्मअभिव्यक्ति के द्वारा उत्पन्न होती है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर शाश्वत जीवन और प्रेम का संचालक है। यह आंतरिक त्रिपुटी जीवन और प्रेम का बहाव ही सभी सृजनों का कारण है। इस सृजन की उच्चतम सीमा मानव है, जिसकी रचना ईश्वर ने अपने रूप से की है तथा जो ईश्वर के तीन दैविक व्यक्तियों का धार्मिक समागम है (*जेनेसिस*, 1:26)। अतः, मानव ईश्वर के साथ और एक दूसरे के साथ सहभागिता रखने की क्षमता से युक्त है।

ईसाई धर्म और संस्कार

जब *सुसमाचार* पढ़े जाते हैं तो ईसाई लोग यीशु को सुनते हैं। वे उनसे असहाय और जरुरतमंद के रूप में मिलते हैं। जब संस्कारों का अनुष्ठान किया जाता है तो वे उनकी (यीशु की) रक्षा करने वाली शक्ति की प्रशंसा करते हैं। संस्कार यीशु द्वारा बताये गये प्रतीकात्मक क्रियाकलाप हैं। ये उनके शिष्यों को उनके साथ गहन सहभागिता निभाने में सक्षम बनाते हैं। सभी ईसाई चर्च दो संस्कारों को मानते हैं, *वपतिस्मा* (नामकरण संस्कार) और *यूकेरिस्ट* (परम प्रसाद)। इसके अतिरिक्त, रोमन कैथोलिक चर्च और पूर्वी रुढ़िवादी चर्च पुष्टिकरण, पुनर्मिलन, बिमारों का मिलन, विवाह और पुरोहिताई अभिषेक को भी स्वीकार करते हैं।

शब्द *बेप्टिज्म* (Baptism) ग्रीक शब्द *बाप्तिजीन* (Baptizein) से आया है। इसका अर्थ धोना या साफ करना है। *बपतिस्मा* का संस्कार, ईसाई दीक्षा संस्कार है। यह व्यक्ति को सदैव के लिए यीशु के चर्च में उसके सदस्य के रूप में सम्मिलित करता है।

शब्द यूकेरिस्ट (Eucharist) ग्रीक शब्द *यूकेरिस्टिया* (Eucharistia) से आया है, जिसका अर्थ धन्यवाद देना है। यह पवित्र ईसाईयों के 'धर्मसमाज', 'पवित्र धार्मिक समागम' या 'ईश्वर का रात्रि भोज' के रूप में भी जाना जाता है। *यूकेरिस्ट* सभी चर्चों में की जाने वाली प्रार्थना का केन्द्रिय क्रियाकलाप है। अधिकांश चर्च इसे रविवार को मनाते हैं। रोमन कैथोलिक चर्च इसे प्रतिदिन मनाता है।

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) चर्च की समुदायवादी प्रकृति पर एक निबंध लिखिए।

....

....

....

....

2) ईसाई धर्म के संस्कारों के अर्थ और क्रियाकलापों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

3.7 सारांश

ईसाई धर्म ऐतिहासिक व्यक्ति नाजरथ के यीशु के व्यक्तित्व व शिक्षा द्वारा स्थापित हुआ था। उनके साथ रहने वाले शिष्यों और मित्रों ने यह अनुभव किया कि वे किसी अन्य धर्म के अग्रदूतों से बढ़कर थे। ईश्वर के साम्राज्य के लिए उनकी सेवा उनकी मृत्यु और पुनरुत्थान को देखने के बाद वे उन्हें (यीशु को) ईश्वर के अवतारी पुत्र के रूप में और लोगों के बीच प्रेम और करुणा के दैविक नियम को स्थापित करने वाले ईश्वर के मसीहा के रूप में मानने लगें। वे ईश्वर–पुत्र के रूप में उनकी पूजा करने लगे।

यीशु मसीह के बाद, *बाइबिल* का ईश्वरीय संदेश के रूप में ईसाई धर्म में एक महत्वपूर्ण स्थान है। चर्च यीशु के शिष्यों का एक समुदाय है जहाँ 'सुसमाचार' का उपदेश दिया जाता है और संस्कारों का अनुष्ठान होता है। ये संस्कार यीशु द्वारा शिष्यों के साथ स्थापित बंधुत्व का विस्तार है। चर्च में उनका जीवन अपनी उपस्थिति देते हुए विशेषतः संस्कारों द्वारा अनुष्ठित किया जाता है। चर्च किसी अन्य विश्वास–समुदायों और धर्म निरपेक्ष विचारधाराओं से प्रतियोगिता नहीं करता है। ईसाईयों को शुभ इच्छा वाले सभी लोगों के साथ प्रेम और सहयोग से रहने का निर्देश दिया गया है ताकि ऐसे प्रमाणिक मानव समुदायों की स्थापना हो सके जिसे ईसाई विश्व में ईश्वर के शासन के प्रतीक के रूप में मानते हैं।

3.8 प्रमुख शब्द

कैथोलिक : *कैथोलिक* एक विशेषण है, जो ग्रीक विशेषण *कैथोलिकोस*, जिसका अर्थ है 'सर्वन्यायी', से लिया गया है। रोमन कैथोलिकों के लिए, 'कैथोलिक चर्च' का तात्पर्य उस चर्च से है, जो रोम के धर्माध्यक्ष से पूर्व सहभागिता रखता है। इसमें पश्चिमी विशेष चर्च और पूर्वी कैथोलिक

चर्च दोनों सम्मिलित हैं। प्रोटेस्टेंटस कभी–कभी 'कैथोलिक चर्च' का प्रयोग पूरे विश्व में और सभी युगों में यीशु मसीह में आस्था रखने वालों को निर्देशित करने के लिए करते हैं।

पोप : पोप (लैटिन भाषा में 'पापा' या ग्रीक भाषा में *पापास*) रोम का धर्माध्यक्ष है और सामान्यतः विश्वव्याप्त कैथोलिक चर्च का अग्रदूत है।

विजय–वाद (**Triumphalism**) : विजय–वाद वह मनोवृति या विश्वास है जिसके अनुसार कोई विशेष सिद्धांत, धर्म, संस्कृति या सामाजिक तंत्र, अन्य सभी से उच्च है और उसे बाकी अन्य सभी धर्मों के ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

3.9 अन्य पुस्तकें और संदर्भ

1) बॉर्ग, मार्कस जे., *द हर्ट ऑफ क्रिश्चियेनिटी,* सैन फ्रांसिस्को, हार्पर, 1989.

2) जीन, कॉम्बी, *हाऊ टू रीड ए चर्च हिस्ट्री,* लंदन, एम.सी.एम. प्रेस, 1982.

3) डेनियल, जे.टी.के. एण्ड पी.ए. सम्पतकुमार, एडि., *एन इन्ट्रोडक्शन टू क्रिश्चियन स्टडीज,* नई दिल्ली, ए.सी.एच.ई. 2001.

4) कैस्पर, वॉल्टर, *जीसस द क्राइस्ट,* लंदन, बनर्स एण्ड ओट्स, न्यू यॉर्क पॉलिस्ट प्रेस, 1976.

5) लीग्रैण्ड, एल.एट ऑल, *गुड न्यूज विटनेस,* बैंगलोर, टी.पी.आई., 1973.

6) मैक्ब्रायन रीचर्ड, *कैथोलिसिज्म,* थर्ड ऐडिसन, लंदन, जॉफ्री चैन्पमैन, 2000.

7) मैक्ग्रैथ, एलिस्टर ई., *एन इन्ट्रोडक्शन टू क्रिश्चियैनिटी,* सेकण्ड ऐडिसन, ऑक्सफोर्ड, ब्लैकवेल, 1997.

8) पॅलोस्की, पीटर, *क्रिश्चियैनिटी,* लंदन, एस.सी.एम. प्रेस, 1982.

9) सोरस–प्रभुजी, द *किंगडम ऑफ गॉड –जीसस वीज़न आफ ए न्यू सोसाइटी,* बैंगलौर, एन.बी.सी.एल.सी., 1981.

10) विलाडेसा, आर. एण्ड मसस, एम., *फॉउन्डेशन ऑफ थियोलॉजिकल स्टडीः ए सोर्स बुक,* न्यूयॉर्क, पॉलिस्ट, 1991.

11) विंगार्ड्स टी.एन.एम., *बैकग्राउण्ड्स टू गॉसपेल्स,* बैंगलोर, टी.पी.आई., 1990.

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ईसाई धर्म नजारथ के यीशु, जो ईसा मसीह के नाम से जाने जाते हैं, पर केन्द्रीत है। इन्हें ईसाई लोग मानव और देवता दोनों मानते हैं। ईसाई धर्म उन

लोगों का धर्म है, जो यीशु की ईश्वर के पुत्र के रूप में पूजा करते हैं, तथा यह मानते हैं कि वे संसार के मोक्ष के लिए ईश्वर की एक अद्वितीय आत्म अभिव्यक्ति हैं। मार्क अपने *सुसमाचार* के प्रारम्भ में ही यह कहते हैं कि "यीशु मसीह, ईश्वर–पुत्र, के *सुसमाचार* का प्रारंभ" (मार्क 1:1)।

2) ईसाई धर्म को जानने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति शीघ्र ही *बाइबिल* की महत्ता को समझ जाता है। *बाइबिल* के पृष्ठों में वह सब कुछ जो यीशु मसीह के विषय में ज्ञात है, समाविष्ट किया गया है। यह विश्व की सबसे अधिक व्यापक रूप से पढ़ी गई पुस्तकों में से एक है और इसका संसार के विभिन्न समाजों और संस्कृतियों पर अत्याधिक व्यापक प्रभाव पड़ा है। *बाइबिल* की अनगिनत टीकायें पुस्तक भंडारों व पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। यदि कोई ईसाई पूजा में भाग लेता है, तो वह पढ़ी जा रही *बाइबिल* के एक परिच्छेद व उसके व्याख्यान को सुनता है। *बाइबिल* ईसाई पूजा का एक अनिवार्य हिस्सा है। यह विश्व में ईसाई जीवन और कर्म का प्रारंभिक स्रोत है। सम्पूर्ण विश्व में लाखों ईसाई अपने दिन की शुरुआत *बाइबिल* के एक परिच्छेद पर मनन द्वारा करते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) नवीन *टेस्टामेंट* चार *सुसमाचारों* से प्रारंभ होता है। ये *सुसमाचार* यीशु के जीवन व उपदेशों की व्याख्या देने के साथ ही साथ इस बात पर भी प्रकाश ड़ालते हैं कि यीशु कौन है और वे इस विश्व के लिए क्या हैं। इसके पश्चात् *प्रेरितों (धर्मदूतों) के अधिनियम* आते हैं, जो ईसाई चर्च के पहले तीस सालों की कहानी बताते हैं। उसके बाद *पॉल के तेरह पत्र* आते हैं। पॉल, ईसाईयों को दुःख देनेवाला, उत्पीड़न देने वाला एक यहूदी था। प्रबुद्ध यीशु के साथ डेमेस्कस के रास्ते में एक नाटकीय मुठभेड़ के बाद वह ईसाई धर्म का एक महान धर्मप्रचारक बन गया था। उसके पत्र चर्च और भूमध्य क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए लिखे गए थे। उसका पहला पत्र यीशु की मृत्यु के 25 वर्षों के भीतर ही लिखा गया था। उसके बाद आठ अन्य पत्र आए। ये पत्र प्रारंभिक ईसाई अग्रदूतों द्वारा विभिन्न चर्चों के लिये लिखे गये *कैथोलिक पत्रों* के रूप में जाने जाते हैं। उसके बाद जॉन की एक 'प्रकाशित की पुस्तक' आती है। यह यहूदी दिव्य साहित्य की साहित्यिक शैली में प्रस्तुत एक दिव्य रचना है और इसे भविष्योद्घोषक साहित्य के रूप में जाना जाता है। यह एशिया माइनर के सात नये चर्चों, जो उत्पीड़न के कारण अत्याधिक दबाव में थे, को सम्बोधित की गई 'आशा की पुस्तक' है।

2) ईसाई लोग *बाइबिल* (दोनों प्राचीन और नवीन *टेस्टामेंट*) को 'ईश्वर के शब्द' के रूप में पूजते हैं। उनका मानना है कि यह सभी मानवीय सीमितताओं के लिये मानवीय भाषा में लिखी गई एक 'दैवीय प्रेरणात्मक' पुस्तक है। 'प्रेरणात्मक पुस्तक' का अर्थ है कि *बाइबिल* मात्र आध्यात्मिक प्रकाश देने वाला महान साहित्य नहीं है, बल्कि यह ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। प्रेरणा का अर्थ यह नहीं है कि मानव लेखक मात्र दैवीय कर्म के सम्पादन के लिए एक निष्क्रिय साधन है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि मानव लेखक ने अपनी भाषा में और अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश में जो कुछ भी लिखा है, वह ईश्वर द्वारा निर्देशित था। इसलिए, *बाइबिल* में लिखा गया प्रकरण मानवीय शब्दों में लिखा गया ईश्वरीय संदेश है।

बोध प्रश्न 3

1) ईसाई मत मुख्यतः एक समुदाय पर आधारित धर्म है। नवीन *टेस्टामेंट* में, चर्च के लिए ग्रीक शब्द *'एक्लेसिया'* का प्रयोग किया गया है। *एक्लेसिया* शब्द लोगों के एक समूह को निर्देशित करता है। इसका अक्षरशः अर्थ है विश्वास के समुदाय में आमन्त्रित 'वे लोग जिन्हें बुलाया गया है'। ईसाईयों में व्याप्त एकता का बंधन न तो जन्म या जाति के जातीय बंधन पर, रंग, समान भाषा या संस्कृति पर, न ही पूजा करने की समान विधि पर आधारित है। ईसाई मत व्यक्ति को मुख्यतः एक समुदाय के सदस्य के रूप में देखता है।

2) जब *सुसमाचार* पढ़े जाते हैं तो ईसाई लोग यीशु को सुनते हैं। वे उनसे असहाय और जरुरतमंद के रूप में मिलते हैं। जब संस्कारों का अनुष्ठान किया जाता है, तो वे (यीशु की) रक्षा करने वाली शक्ति की प्रशंसा करते हैं। संस्कार यीशु द्वारा बताए गए प्रतीकात्मक क्रियाकलाप हैं, जो उनके शिष्यों को उनके साथ गहन सहभागिता निभाने में सक्षम बनाते हैं। सभी ईसाई चर्च दो संस्कारों को मानते हैं, *बपतिस्मा* (नामकरण संस्कार) और *यूकेरिस्ट* (परम प्रसाद)। इसके अतिरिक्त, रोमन कैथोलिक चर्च और पूर्वी रुढ़िवादी चर्च पुष्टिकरण, पुनर्मिलन, बीमारों का मिलन, विवाह और पुरोहिताइ अभिषेक को भी स्वीकार करते हैं।